इकाई 1. वेदांगों का परिचय एवं वर्ण्यविषय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

बी0 ए0 तृतीय वर्ष संस्कृत के द्वितीय प्रश्नपत्र में खण्ड चार से सम्बन्धित यह पहली इकाई है। इस खण्ड में वेदांग ,उपनिषद् एवं आरण्यक से सम्बन्धित वर्णन किये गये हैं। प्रस्तुत खण्ड की प्रथम इकाई में वेदांगों का परिचय एवं वर्ण्यविषय प्रस्तुत किया गया है।अतः इस इकाई में आप शिक्षा ,कल्प, निरूक्त, व्याकरण छन्द और ज्योतिष् नामक छः वेदांगों का अध्ययन करेंगें।

भारतीय साहित्य और संस्कृति का उद्‌गम स्थान वेद हैं । धर्म,दर्शन,ज्ञान–विज्ञान आदि सभी वेदों से ही निकले हुए माने जाते हैं। अपरा विद्या में गणित और वेदों के अलावा वेदों के अंगभूत छः वेदांग माने गये हैं, वेद की सहायक विद्याओं को वेदांग कहते हैं। उनमें प्रथम शिक्षा है जो वेदों का ज्ञान कराने में सक्षम है। इसी प्रकार यज्ञीय कार्यों के लिए कल्प,शब्दादि के स्वरूप ज्ञान हेतु व्याकरण ,पदों के निर्वचन के लिए निरूक्त छन्दों के ज्ञान के लिए छन्द तथा यज्ञानुष्ठान् के लिए आवश्यक नक्षत्र ,तिथि,मासादि,का सम्यक् ज्ञान करने के लिए ज्योतिष् नामक वेदांग की आवश्यकता होती है ।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप वेदां के अंगभूत छः वेदांगों का परिचय प्राप्त कर उनके प्रतिपाद्य को समझते हुए वेदांगों का महत्व बता सकेंगे ।

1.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई में वेदांगों का परिचय एवं वर्ण्यविषय जान लेने के बाद आप बता सकेंगे कि –

- शिक्षा नामक वेदांग का कार्य एवं महत्व क्या है
- यज्ञीय कार्यों के लिए कल्प का क्या उपयोग है
- शब्दों की निर्मिति और उनके स्वरूप ज्ञान में व्याकरण का क्या महत्व है
- शब्दों के निर्वचन में निरूक्त की क्या भूमिका है
- छन्दज्ञान के लिए छन्दों की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है
- यज्ञानुष्ठान् के लिए आवश्यक नक्षत्र ,तिथि,मासादि,का सम्यक् ज्ञान करने के लिए ज्योतिष् नामक वेदांग की आवश्यकता होती है ।

1.3 वेदांगों का परिचय

मात्रा– स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते है मात्राऐं तीन होती है–उदात्त, अनुदत्त और स्वरित। में लगने वाला समय ह्रस्व, द्विमात्रा को दीर्घ और त्रिमात्रा का प्लुत कहते है द्वे दीर्घ। तिस्रः प्लुत उच्यते स्वरः।

बल–वर्णो के उच्चारण स्थान और प्रयत्न को 'बल' कहते है। वर्णो के उच्चारण के समय वायु जिन स्थानों से टकराता हुआ बाहर निकलता है उसे 'स्थान' कहते है। स्थान आठ होते है –कण्ठ, उरस्, तालु, मूर्धा, दन्त ओष्ठ, नासिका और जिह्वामूल। वर्णो के उच्चारण में किये गये प्रयास को 'प्रयत्न होता है। प्रयत्न दो प्रकार का होता है –अभ्ययन्तर और बाह्य। वर्णो के उच्चारण के लिए मुख के भीतर जो प्रयत्न किया जाता है उसे आभ्यन्तर प्रयत्न कहते है आभ्यन्तर प्रयत्न चार प्रकार का होता है –स्पृष्ट

, ईषत्स्पृष्ट, विवृत और संवृत । वर्णो के उच्चारण में मुख के बाहर जो प्रयत्न होता उसे 'बाह्य' प्रयत्न कहते है। बाह्य प्रयत्न को अनुप्रदान भी कहते है, बाह्यप्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है– विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्प्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

साम– शिक्षाग्रन्थो में वर्णो के उच्चारण के गुण एवं दोषों का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। पाणिनीय शिक्षा में पाठक के छः गुण बताये गये है–माधुर्य, अक्षरव्यक्ति (वर्णो का स्पष्ट उच्चारण), पदच्छेद (पदों का अलग–अलग विभाजन), सुस्वर (सुन्दर स्वरों का उच्चारण), धैर्य (धीरतापूर्वक पढना) और लयसमर्थ (सुन्दर लय से पढना)। इसके अतिरिक्त पाणिनीयशिक्षा में छः प्रकार के अधम पाठकों का भी निर्देश है– गीती (गा गाकर पढने वाला), शीघ्री (जल्दी जल्दी पढने वाला), शिरःकम्पी (शिर हिला–हिलाकर पढने वाला), लिखित पाठक (स्वलिखित पुस्तक पढने वाला), अनर्थज्ञ (बिना अर्थ समझे पढने वाला) और अल्पकण्ठ (अनभ्यस्त पाठ करने वाला)। श्लोक –

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः !
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठकाः गुणाः !!
गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखितपाठकः
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।। पाणिनीय शिक्षा

सन्तान : – सन्तान का अर्थ है – संहिता । पदों की अतिशय सन्निधि को संहिता कहते हैं । प्रत्येक वेद के वर्णों का उच्चारण एक सा न होकर भिन्न – भिन्न प्रकार से होता है । इसका विस्तृत विवेचन शिक्षा ग्रन्थों में प्राप्त होता है । यही कारण है कि प्रत्येक वेद के **अलग** – अलग शिक्षा ग्रन्थ है । इसी प्रकार प्रत्येक वेद के मन्त्र पाठ में संहिता या सन्धि विच्छेद आवश्यक बताया गया है ।

प्रातिशाख्य – भारतीय वांग्मय में संहिताओं का महत्वपूर्ण स्थान है ! संहिताआं के पाठ से सम्बद्ध वियों का प्रतिपादन प्रातिशाख्य ग्रन्थों में हुआ है । प्रातिशाक्ष्य शिक्षा के प्राचीनतम ग्रन्थ है। । पाणिनि ने प्रातिशाख्यों का उपयोग किया है अतः प्रातिशाख्य पाणिनि के पूर्ववर्ती माने जाते है । इन्हें प्रातिशाख्य इसलिये कहा जाता है कि ये वेद की प्रतिशाखा से सम्बद्ध रचनाऍ है । प्रातिशाख्य शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ यही है कि वेद को किसी एक शाखा से सम्बद्ध ग्रन्थ प्रातिशाख्य हैं । शाखायां शाखायां प्रति प्रतिशाखम् प्रतिशाखायां भवम् प्रतिशाख्यम् । इस प्रकार वेदों की एक एक शाखा से सम्बद्ध ग्रन्थ प्रातिशाख्य कहते हैं !

प्रातिशाख्यों में उच्चारण, स्वरविधान, सन्धि विधान, हृस्व – दीर्घविधान, लोपागमविकारादि विधान आदि संहितापाठ से सम्बद्ध रखने वाले विषयों का विवेचन किया गया है । संहिता पाठ पदपाठ के रूप में परिवर्तित होने के नियमों का विवरण

भी इनमें प्राप्त होता है । इस समय निम्नलिखित प्रातिशाख्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं –

1. ऋक प्रातिशाख्य
2. तैतिरीय प्रातिशाख्य
3. वाजसनेयि प्रातिशाख्य
4. अथर्ववेद प्रातिशाख्य
5. सामप्रातिशाख्य

प्रतिपाद्यविषय – ऋक्प्रातिशाख्य में कुल तीन अध्याय है और प्रत्येक अध्याय में छः पटल है । इस प्रकार कुल अठारह पटल है । प्रत्येक पटल वर्गों में विभाजित है । प्रत्येक वर्ग में सामान्यतः पॉच श्लोक है । ऋक्प्रतिशाख्य में मुख्य विषय वर्ण्य , पद, सन्धि, स्वर , छन्द, क्रमपाठ एवं वेदाध्ययन है । इस प्रातिशाख्य के प्रथम पटल स्वर, व्यंजन, स्वरभक्ति,रक्त , नाभि, प्रगृह्य आदि पदों का लक्षण प्रतिपादित है ।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध यह प्रातिशाख्य दो खण्डों में विभक्त है । प्रत्येक खण्ड में बारह अध्याय और कुल चौबीस अध्याय है । विस्तार की दृष्टि से यह प्रातिशाख्य एवं वाजसनेयि प्रातिशाख्य से छोटा है किन्तु विषय विवेचन की दृष्टि से यह अत्यन्त विस्तृत एवं प्रामाणिक है । इस प्रातिशाख्य के प्रथम अध्याय में वर्णसाम्नाय, हृस्व, दीर्घ, प्लुत तथा उदात्तादि स्वर, अप्क्त एवं इंगय आदि विषयों का विवेचन है । द्वितीय अध्याय में शब्दोत्पत्ति , स्वर – व्यंजन, स्पर्श, अनुनासिक, अन्तःस्थ, उष्म आदि वर्णों के उच्चारण प्रकार का विधिवत् विवेचन है ।

वाजसनेयि प्रातिशाख्य – शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता से सम्बद्ध वाजसनेयि प्रातिशाख्य है । इस प्रातिशाख्य की रचना महर्षि शौनक के शिष्य कात्यायन ने की है । यह कात्यायन वैयाकरण कात्यायन से भिन्न और पाणिनि से पूर्ववर्ति है ।

वाजसनेयि प्रातिशाख्य में कुल आठ अध्याय है । प्रथम अध्याय में 169 सूत्र है जिनमें वर्णात्पत्ति , उच्चारण विधि , करण तथा पारिभाषिक शब्दों का विस्तृत लक्षण दिया गया है । द्वितीय अध्याय में स्वरों के लक्षण तथा नियम प्रतिपादित है ।

अथर्वप्रातिशाख्य – अथर्ववेद से सम्बद्ध दो प्रातिशाख्य ग्रन्थ प्रकाशित है – एक विश्वबन्धु शास्त्री द्वारा पंजाब विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला से 1923 ईं 0 में प्रकाशित हुआ है जिसका संस्करण 1940 ई 0 मं डा0 सूर्यकान्त द्वारा लाहौर से प्रकाशित है । दूसरा ग्रन्थ डॉ0 ह्विटनी द्वारा 1862 ई0 में शौनकीया चतुरध्यायिका के नाम से सानुवाद प्रकाशित है । इसमें कुल चार अध्याय है । विस्तार की दृष्टि से यह सबसे छोटा प्रातिशाख्य ग्रन्थ है । इसके प्रथम अध्याय में ध्वनि तथा उनका वर्गीकरण , विसर्जनीय, अभिनिधान, अक्षर और उनकी मात्रा वर्णविकार , आगम आदि का विवेचन है ।

सामप्रातिशाख्य – सामवेद से समबद्ध तीन प्रातिशाख्य प्रकाशित है – सामतन्त्र,

पुष्पसूत्र, और ऋक्तन्त्र । सामतन्त्र के रचयिता औद्व्रति है । पुष्पसूत्र पुष्प ऋषि द्वारा रचित है । सामवेदीय सर्वानुक्रमणी के अनुसार पुष्पसूत्र के रचयिता वररूचि है । इसमें कुल दश प्रपाठक या अध्याय है । इसका सम्बन्ध गान संहिता से है और इसमें तीन स्तोम का विशेष रूप से विवेचन किया गया है । इसमें उन स्थलों और मन्त्रों का विवरण है जिनमें स्तोम का विधान और अपवाद होता है ।

व्याकरण –

वैदिक वाड्.मय में व्याकरण का प्रमुख स्थान है । वेद के षडंगों में व्याकरण को मुख कहा गया है । मुखं व्याकरणं स्मृतम् । जिस प्रकार शरीर के अवयवों में मुख अग्रगण्य है और मुख के बिना भोजनादि न होने से शरीर की पुष्टि नहीं हो सकती, उसी प्रकार व्याकरण के बिना वेद रूपी पुरूष के शरीर की रक्षा असम्भव है और वेद के छः अंगों में व्याकरण का मुख्य स्थान है । व्युत्पत्ति के आधार पर जिसके द्वारा पदों के प्रकृति प्रत्यय का विवेचन किया जाता है उसे व्याकरण कहते है । व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम् । ऋग्वेद के एक मन्त्र में व्याकरणशास्त्र का एक वृषभ से रूपक बांधा गया है । इस वृषभ के नाम आख्यात, उपसर्ग और नित ये चार सींग है । भूत, भविष्य, और वर्तमान ये तीनों काल इसके तीन पाद है, सुप और तिड्. रूप इसके दो शिर है इन तीनों स्थानों में बंधा हुआ शब्द करता है । यह महान् देव मनुष्यों के शरीर में प्रवेश किये हुये है –

चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश ।।

शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थबोध के लिये व्याकरण का ज्ञान होना आवश्यक है । क्योंकि व्याकरण के द्वारा ही शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है । पंतंजलि ने महाभाष्य में अष्टाध्यायी की व्याख्या प्रारम्भ करने के पूर्व व्याकरण के अध्ययन के पॉच प्रयोजन बताये हैं – रक्षा, उह, आगम, लघु और असन्देह ।

रक्षोहागमनलघ्वसन्देहाः प्रयोजनानि ।।

निरूक्त – वेद के छः अंगों में निरूक्त का महत्वपूर्ण स्थान है । निरूक्त निघण्टु की टीका है । निघण्टु में वेद के कठिन शब्दों का क्रमबद्ध रूप में संकलन है। यास्क ने निघण्टु पर निरूक्त नामक भाष्य लिखा है । कुछ विद्वानों का विचार है कि निघण्टु और निरूक्त दोनों का रचयिता यास्क है । किन्तु महाभारत में कश्यप को निघण्टु का रचयिता बताया गया है । निरूक्त के प्रारम्भ में निघण्टु का समाम्नाय कहा है । कहा जाता है कि कृतधर्मा ऋषियों ने बिखरे हुये मन्त्रों को एकत्र कर निघण्टु नामक ग्रन्थ बनाकर अध्ययन – अध्यापन द्वारा इसका विस्तार किया पहले ब्राह्मण ग्रन्थों में समाम्नात किया गया , किन्तु जब ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदार्थज्ञान में पर्याप्त न हुए, तब

निरूक्तादि ग्रन्थों में उन्हें समाम्नात किया गया । निघण्टु में पॉच अध्याय है ।

यास्क – निरूक्त के रचयिता यास्क है । कहा जाता है कि उद्दालक आरूणि एक प्रसिद्ध विद्वान था । उसने अश्वपति से तत्वज्ञान की शिक्षा ग्रहण की थी । उसका पुत्र श्वेतकेतु था । श्वेतकेतु की वंश परम्परा में महान वैयाकरण शाकपूणि हुआ । शाकपूणि का उल्लेख यास्क ने निरूक्त में किया है । शाकपूणि के वंश में आसुरि नामक एक विद्वान हुआ, जिसका शिष्य पंचशिख था । यह पंचशिख सांख्यदर्शन का महान आचार्य था । इन्हीं की वंश परंपरा में यास्क हुये । निरूक्त तीन काण्डों में विभक्त है । इसमें बारह अध्याय है और अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट के रूप में जोडे गये हैं। इस प्रकार निरूक्त में कुल चौदह अध्याय है । निरूक्त के प्रथम काण्ड को नैघण्टुक काण्ड कहते है । इस काण्ड में तीन अध्याय है । प्रथम अध्याय में व्याकरण और निरूक्त के सम्बन्धों पर विचार किया गया है । द्वितीय और तृतीय अध्यायों में पर्यायवाची शब्दों की व्याख्या है ।

द्वितीय काण्ड को नैगमकाण्ड कहते है । इसे ऐकपदिक भी कहते है । नैगमकाण्ड में एकपदादि और अनवगत संस्कार पदों का वर्णन किया गया है । जैसे पिता शब्द अनवगत संस्कार है । इसका अर्थ है पाता, पालयिता । इस प्रकार इस काण्ड में एकार्थ में अनेक शब्द और अनेकार्थ में एक शब्द तथा अनवगत संकार शब्दों का निर्देश किया गया है । जैसे पृथ्वी अर्थ में गौ आदि अनेक शब्द आये है और पृथ्वी, रश्मि, इन्द्रिय, गौ आदि अनेक अर्थो में गो शब्द का प्रयोग है ।

निरूक्त के तृतीय काण्ड को दैवतकाण्ड कहते है । दैवतकाण्ड में देवताओं की प्रधानतया स्तुति की गयी है । तद यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद् दैवतम् । स्तुति के मन्त्र तीन प्रकार के है – परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक ।

छन्दः शास्त्र – वेद के छः अंगों में छन्द को वेद का पाद कहा गया है छन्दः पादौ तु वेदस्य । अर्थात् वेद में छन्द शास्त्र का वही स्थान है जो शरीर में पैरों का । जिस प्रकार पैर के बिना मनुष्य चलने में असमर्थ होता है उसी प्रकार छन्द ज्ञान के बिना वेद पंगु है । निघण्टु में बताया गया कि छद् धातु का अर्थ स्तुति करना, पूजा करना और प्रसन्न करना है । यतः छन्दों के द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है, उन्हें प्रसन्न किया जाता है । अतः इन्हें छन्द कहते है । वैदिक छन्दों में गुरू और लघु पर विचार नहीं किया जाता है और न उनकी संख्या पर ही विचार किया जाता है । एक या एकाधिक अक्षरों का न्यूनाधिक्य होने पर भी छन्द परिवर्तित नहीं होता है । हॉ उनकी संज्ञा परिवर्तित हो जाती है । जैसे एक अक्षर कम होने पर उसे निचृत् कहते है । अर्थात् जब किसी छन्द में उस छन्द के नियताक्षर में एक कम होता है तो उस छन्द के नाम के साथ निचृत् प्रयोग होता है, जैसे गायत्री छन्द चौबीस अक्षर का होता है

यदि उसमें तेइस अक्षर हो तो उसे निचृत् गायत्री कहेगें । इसी प्रकार यदि किसी छनद में उसके नियताक्षरों से अक्षर का होता है यदि उसमें एक अक्षर अधिक होकर पचीस अक्षर हो जाते हैं तो उसे भूरिक् गायत्री कहेंगे ं इसी प्राकर दो अक्षर कम होने पर उस छन्द को विराट कहते है ।

छन्द शास्त्र का प्रवर्तक आचार्य पिंगल है । षडगुरूशिष्य ने वेदार्थ दीपिका में छन्द शास्त्र के रचयिता पिंगल को पाणिनि का अनुज बताया है इनके द्वारा रचित छन्द शास्त्र वैदिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के छनदों के प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है ।

ज्योतिष –

वेद के छः अंगों में ज्योतिष का महत्वपूर्ण स्थान है । वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम् ।। पाणिनि ने ज्योतिष को वेदपुरूष का नेत्र कहा है । यज्ञों के विधान में विशिष्ट समय का ज्ञान अपेक्षित है और यज्ञ यागों के लिये उपयुक्त समय वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, नक्षत्र, पक्ष, दिन – रात, आदि का मान ज्योतिष के द्वारा ही संभव है, अतः उक्त नियमों के निर्वाह के लिये ज्योतिष का ज्ञान नितान्त आवयश्क है । वेदांग ज्योतिष में ज्योतिष को वेद का सर्वोत्तम अंग माना गया है ।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।

तद्वद वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।

वेदांग ज्योतिष भारतीय ज्योतिषशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ है । इसके रचयिता लगध नामक ऋषि थे । इसके दो पाठ मिलते है – एक ऋग्वेद ज्योतिष जिसमें छत्तीस श्लोक है और दूसरा यजुर्वेद ज्योतिष, जिसमें चौवालिस श्लोक मिलते है । दोनों ग्रन्थों के अधिकांश श्लोक मिलते – जुलते हैं, पर उनके क्रम में अन्तर परिलक्षित होता है । इस पर अनेक विद्वानों ने व्याख्यायें लिखी है किन्तु सभी व्याख्याकारों में मतैक्य नहीं है । शंकरबालकृष्ण दीक्षित अनेक प्रमाणों के आधार पर इसका समय 1400 ई0 पूर्व0 मानते है । भारतीय ज्योतिष का मूल वेदांगज्योतिष माना जाता है । इसका विषय इतना दुरूह ह कि कोई विद्वान ज्योतिषी ही इसे समझा सकता है ।

वेदांगज्योतिष के प्रथम आचार्य ब्रह्मा है । उन्होंने अपने पुत्र वसिष्ठ को ज्योतिष विद्या सिखायी । विष्णु ने उस ज्ञान को सूर्य को सिखाया जो सूर्यसिद्धान्त कहा जाता है । उसे सूर्य ने मय को पढ.ाया जो वासिष्ठ सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

ब्राह्मणकाल में कृत्तिका नक्षत्र से नक्षत्रों की गणना की जाती थी और कृत्तिका के प्रथम चरण में ही वसन्त सम्पात होता था । उन दिनों कृत्तिका नक्षत्र में दिन रात बराबर होता था । शतपथब्राह्मण में उत्तरायण और दक्षिणायन का विभाजन बारह मास को दृष्टि में रखकर किया गया है ।

पारस्करगृह्यसूत्र में विवाह के सम्बन्ध में , खेत जोतने के सम्बन्ध में तथा नक्षत्रों के शुभाशुभ फल का निर्देश है । कल्प सूत्र में विवाह प्रकरण में ध्रुव इव स्थिरा भव वाक्य आया है । इस कथन से ज्ञात होता है कि उस समय विवाह के अवसर पर वर – वधू को ध्रुवदर्शन कराने की प्रथा थी ।

ज्योतिष की उपयोगिता

शरीर की प्रकृति एवं प्रवृत्ति के नियामक ग्रह

1.आत्मा – सूर्य , 2. मन – चन्द्रमा , 3. सत्व – भौम , 4. वाणी – बुध , 5. ज्ञान , सुख = गुरू 6. वासना, मद = शुक्र , 7. दुःख – शनि

बुद्धि और विद्या स्थान

शरीर आदि 12 भावों में सामान्युतया विद्या स्थान = पंचम, बुद्धि स्थाान = चतुर्थ, किन्तु नौ ग्रह स्थिति के अनुसार अन्य भाव भी विद्या – बुद्धि के कारक हो जाते है।

2. विभिन्न भावों में ग्रहों की स्थिति तथा सम्बन्धों से, ग्रहों के स्वभाव से, राशियों के गुणधर्मानुसार, कारक और भावेश के अनुसार जातक की बुद्धि और विद्या का ज्ञान किया जाता है । ग्रहों और राशियों के आधार पर विद्या या शिक्षा क्षेत्र का चयन, जीविका क्षेत्र का चयन किया जाता हैं ।

उदाहरणार्थ योग –

ज्योतिष का नियामकत्व –

1. जातक के प्राकृतिक गुणों की पहचान
2. प्राकृतिक गुणों के विपरीत निर्णय पर अंकुश
3. जीवन की यथार्थता का परिचय
4. काल्पकनिक उड़ान पर नियन्त्रण
5. उचित समय पर उचित निर्णय

शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिष की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण है । किसी विद्यार्थी के लिए कौन सा विषय उपयुक्त होगा यह जानकारी देने वाला एक मात्र ज्योतिष शास्र है। कोई जातक किस विषय में पारंगत हो सकता है, यह ज्योतिष से ज्ञात किया जा सकता है । जैसे विद्या प्राप्ति के लिए प्रबल योगकारक ग्रह सूर्य हो तो उच्च शिक्षा का योग बनता है । यदि विद्या स्थान मे सूर्य – कुम्भ, मिथुन व तुला राशि में हो तो कानुन से संबधित विषयों में सफलता प्राप्त होती है । यदि यही सूर्य धनुं एवं मेष राशि मे हो तो भाषा विषय (आर्ट्स) में अधिक सफलता प्राप्त होती है । सामान्य रूप से सूर्य भाषा व कानूनी विषयों मे सफलता देता है । चन्दमा मन का कारण ग्रह है । यदि चन्द्रमा कर्क राशि का हो अर्थात् स्व।राशि का होकर लग्नोस्थम हो तो शास्त्रीय विषयो में

अधिक सफलता देता हैं ।मंगल सामान्य रूप से ईन्जीनियरिंग से संबंघित विषय डॉक्टरी, तथा आइ.ए.एस इत्यादि क्षेत्र में सफलता देता है ।बुध वाणिज्य, एकाउन्टिंग, शिक्षा, सी.ए. एवं सी.एस. इत्यादी मे सफलता देता है ।गुरु पंचम गत हो तो मानवशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में अधिक सफलता देता है । यदि यह वृष, कन्या व मकर राशि मे हो तो जिओलोजी, बायोलोजी तथा कृषिविज्ञान में सफलता देता है । साथ में मगंल बुध इत्यादी ग्रहो का भी बल प्राप्त होतो डॉक्टरी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त होती है । शुक्र मनोरंजन तथा कलाकारिता सम्बन्धित विषयों जैसे नाट्यकला, फिल्म म्युजिक तथा कविता–कथा इत्यादी मे सफलता है । शनि स्वभाव से ही मन्द गति का है । अतः विद्या स्थान में हो तो विद्या प्राप्ति में विलम्ब करता है । विशेष रूप से मेष, वृश्चिक, कर्क एवं सिंह राशि में हो तो । इसके अतिरिक्त योगकारक हो तो दृ रसायनशास्त्र, यन्त्रविद्या, तन्त्रादि गूढ विद्या देता है ।राहु एवं केतु शनि की तरह ही विद्या में रुकावट व विलम्ब करते है, परन्तु गूढ विद्या, भूगर्भशास्त्र, यन्त्र – तन्त्र शास्त्र तथा लेखन कला में निपुण बनाता है । पेन्टिंग , फोटोग्राफी, चित्रकला, इत्यादी में भी सफलता देता है । अतः ज्योतिश शास्त्र के द्वारा उचित समय में सही विषय चयन इत्यादी में सहायता प्राप्त हो सकती है ।

वर्तमान समय मे विवाह में भी अनेक समस्याएँ आती है । जातक का विवाह कब होगा ? जीवन साथी किस प्रकार का होगा, इत्यादि पूर्व में ही जानकारी देने वाला आज के वैज्ञानिक युग में भी केवल ज्योतिष शास्त्र ही है, जिसके द्वारा यह बताना संभव हैं कि उपर्युक्त स्थितियों में क्याा करें ? जैसे यदि जातक के जन्म काल में सूर्य, चन्द्र, बुध में से कोई किसी की राशी में हो तो सामान्य रूप से विवाह में विलम्ब होता है । सप्तेमेश शुक्र व गुरू यदि पापाक्रान्त अथवा दुःख स्थान में हो तो भी वैवाहिक जीवन के लिए अशुभकारक होता है । यदी उपरोक्त अशुभता में विवाह में विलम्बर, दोनों में मनमुटाव अथवा सम्बन्ध – विच्छेद जैसी स्थिति आती है । यह ज्ञान केवल ज्योतिष शास्त्र के द्वारा ही सम्भव है । ज्योटतिष के द्वारा उसके दोष परिहार करके वैवाहिक जीवन सुखी बनाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त संतान प्राप्ति से सम्बन्धित अनेक प्रश्न जो आजकल एक लाख से डेढ़ लाख तक खर्च करके टेस्ट टयूब बेबी प्राप्त करने में भी असफल होते है । इस क्षेत्र में विज्ञान आज भी सक्षम नही है । ज्योतिष से सन्तान प्राप्ति का योग, समय इत्यादि ज्ञात किया जा सकता है, तथा दोष परिहार भी किया जा सकता है। कहा गया है –

तत्प्राप्तिधर्ममूला तदनु बुघकवी शंकरस्याभिषेका –

श्चन्द्रश्तेत्तद्वदेव त्रिदिवपतिगुरुर्मन्त्रयन्त्रौषधीनाम् ।

सिध्या मन्दारसूर्या यदि शिखितमसी तत्र वंशेशपूजा

कार्याडडम्नायोक्तरीत्या बुधगुरुनवयाः क्षिप्रमेवात्रसिध्द्रिः ।।

यदि सन्तान प्राप्ती में बाधक बुध, शुक्र या चन्द्र हो तो रुद्राभिषेक करने से, बृहस्पति बाधक हो तो मन्त्र – तन्त्र से एवं औषधि के संयुक्त प्रयोग से, शनि भौम या राहुकेतु

तथा नवमेश बुध – गुरू प्रतिप्रबन्धक हो तो पार्वती के अनुष्ठान से सन्तान प्राप्ति हो सकती है । ये सामान्य परिहार के अलावा सन्तान प्राप्ति में पितुश्राप से, नागश्राप से, पूर्वजन्म में ब्याध कर्म (भ्रूणणहत्या) अनुचित वैद्य योग तथा जीव का जन्म होते है । ऐसी परिस्थिति में उन योगों का ज्ञान करके उसका परिहार करने से सन्तान प्राप्ति होती है । यह सभी केवल ज्योतिष शास्त्र के द्वारा ही सम्भव है ।

अत :निष्कर्ष के रूप में यह सिद्ध होता है की आज के प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में भी ज्योतिष शास्त्र की शिक्षा या भारतीय मूल की शिक्षा मानव जीवन के लिए अत्यहन्तज आवश्यक व उपयोगी है । उपरिलिखित समस्त गुण – दोषों का ज्ञान जातक के जन्मष समय की ग्रहस्थिति के आधार पर सम्भतव है । अतः ज्योतिष विद्या उचित मार्ग दर्शन कर शिक्षा क्षेत्र के चयन में सहयोग तथा अनावश्यहक भटकाव से रोकती है ।

कल्प –

वैदिक वांगमय के विकास में कल्प का महत्वपूर्ण स्थान है । कल्पसूत्र शब्द कल्प और सूत्र इन दो शब्दों के योग से निष्पन्न हुआ । कल्प शब्द का अर्थ है – वेद विहित कर्मों का क्रमपूर्वक कल्पना करने वाला शास्त्र । '**कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पना – शास्त्रम्**' । विवाह उपनयनादि संस्कारों एवं यज्ञ – यागादि विधियों को क्रमबद्ध रूप में वर्णन करन वाले सूत्र ग्रन्थों को कल्प कहते है । सूत्र शब्द का अर्थ है – संक्षेप अर्थात् जहॉ थोड़े शब्दों में विशेष अर्थ को कहा जाय उसे सूत्र कहते है । '**अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थबोधकत्वं सूत्रत्वम्**' । इस प्रकार सूत्रों में किसी भी विषय को संक्षेप में कहा जाता है । इस प्रकार कल्पसूत्र का अर्थ होता है – यज्ञ यागादि के नियमों का संक्षेप में कहना । कल्पसूत्र में सम्पूर्ण धार्मिक नियमों तथा यज्ञ विधान के नियमों का संक्षेप तथा व्यवस्थित रूप में प्रतिपादन हुआ है । कल्पसूत्रों के मुख्यतः चार प्रकार होते है – श्रौत सूत्र, गृह्सूत्र, धर्मसूत्र और शूल्व सूत्र ।

श्रौत सूत्र – वैदिक संहिताओं में वर्णित यज्ञ – यागादि विधानों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने वाले सूत्रों को श्रौत सूत्र कहते है । श्रौतसूत्रों में श्रुति प्रतिपादित महत्वपूर्ण चौदह यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन प्राप्त होता है । ये भारतीय यज्ञीय प्रणाली के विषय में प्रभूत सामग्री प्रसतुत करते है । चौदह श्रौतयज्ञ है – सात हविर्यज्ञ और सात सोमयाग । अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध और सौत्रामणि ये सात हर्वियाग कहलाते है । अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम के सात सोमयाग कहलाते है । ऋग्वेद से सम्बद्ध दो श्रौतसूत्र है – आश्वलायन और शांखायन । आश्वलायन श्रौतसूत्र के रचयिता आश्वालायन ऋषि है । आश्वलायन शौनक ऋषि के शिष्य थे । ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम दो अध्यायों के रचयिता आश्वलायन और शौनक माने जाते है ।

शुक्लयजुर्वेद से सम्ब्द्ध कात्यायन श्रौतसूत्र है । इसके रचयिता कात्यायन है । इसमें कुल छब्बीस अध्याय है । इसकी प्रणाली शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट प्रयोगक्रम के अनुसार है किन्तु तीन अध्याय सामवेदीय ताण्ड्य ब्राह्मण से सम्बद्ध है । इसके प्रथम अध्याय में दस कण्डिकायें है । कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध छः श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं । बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वैखानस, भारद्वाज और मानव श्रौतसूत्र । इसमें से चार तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्ध रखते है ।

सामवेद से सम्बद्ध चार श्रौतसूत्र है – आर्षेयकल्पसूत्र , लाट्यायन श्रौतसूत्र और द्राह्याण श्रौतसूत्र तथा जैमिनीय श्रौतसूत्र है । इनमें ऋ आर्षेयकल्प सूत्र सबसे प्राचीन और पंचविंश ब्राह्मण से सम्बद्ध है । मशक ऋषि द्वारा प्रणीत होने से इसका दूसरा नाम मशकसूत्र भी है । इसमें पंचविंश ब्राह्मण के अनुसार सोमयाग से सम्बद्ध स्तुतियों का विवरण है ।

गृह्यसूत्र – गृह्यसूत्र गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध धार्मिक अनुष्ठानों, आचार विचारों एवं गृह्य यज्ञों का विवेचन करते हैं । इनमें गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त और मृत्यु के बाद भी किये जाने वाले संस्कारों तथा अनुष्ठान विधियों का विवरण प्राप्त है । गृह्यसूत्रों में 42 संस्कारों का वर्णन है किन्तु गौतम चालीस 40 संस्कार मानते है । पंचमहायज्ञों के नाम है – ब्रह्मज्ञान, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ । ब्रह्यज्ञ को ऋषि यज्ञ भी कहते है । ऋग्वेद से सम्बद्ध दो गृह्यसूत्र प्रमुख है – आश्वलायन गृह्यसूत्र, शांखायन सूत्र ।

आश्वालयन गृह्यसूत्र ऐतरेय ब्राह्मण से सम्बद्ध है । इसमें चार अध्याय है और प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड है । प्रथम अध्याय में विवाह, पार्वण, पशुयज्ञ, चैत्ययज्ञ, गर्भाधानादि संस्कारां का वर्णन है ।

शांखयन गृह्यसूत्र में छः अध्याय हैं जिनमें चार अध्याय ही मौलिक प्रतीत होते है । इसके प्रथम अध्याय में गर्भाधानादि संस्करों एवं पार्वण का वर्णन है । द्वितीय अध्याय में उपनयन एवं ब्रह्मचर्य आश्रम का वर्णन है ।

शुक्लयजुर्वेद का एकमात्र गृह्यसूत्र पारस्कर गृह्यसूत्र है । इसे वाजसनेय गृह्यसूत्र अथवा कातीय गृह्यसूत्र भी कहते है । इसमें तीन काण्ड है । प्रथम काण्ड में आवसथ्य अग्न्याधान, विवाह तथा गर्भाधान से लेकर अन्नप्राशन तक संस्कार वर्णित है ।

कृष्णयजुर्वेद के नौ गृह्यसूत्र है – बोधायन गृह्यसूत्र, भारद्वाज, गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र आदि ।

सामवेद से सम्बद्ध तीन गृह्यसूत्र है – गोभिल गृह्यसूत्र, खादिर गृह्यसूत्र और जैमिनीय गृह्यसूत्र ।

धर्मसूत्र – धर्मसूत्र सामाजिक जीवन के नियमों, रीति – रिवाजों , धार्मिक क्रियाकलापों,

आचार – विचारों एवं राजाओं के कर्तव्यों का विवेचन करते है ं भारतीय कानून के ये आदि ग्रन्थ है ।

बौधायन धर्मसूत्र – यह धर्मसूत्र कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध है । उसकी रचना गद्य पद्यात्मक है । इसमें चार खण्ड हैं जिन्हें प्रश्न भी कहते है। अन्तिम प्रश्न परिशिष्ट के रूप में है । यह कल्पसाहित्य के इतिहास में सबसे प्राचीन है ं इस धर्मसूत्र के रचयिता बोधायन है ।

गौतम धर्मसूत्र – यह सामवेद की राणायनीय शाखा से सम्बद्ध है । इसमें तीन प्रश्नश और अठारह अध्याय है । प्रथम व द्वितीय प्रश्न में नौ – नौ अध्याय तथा तृतीय प्रश्न में दस अध्याय है । इसमें प्रथम व द्वितीय अध्याय में ब्रह्मचर्य एवं उपनयन का वर्णन है ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र – आपस्तम्ब कल्पसूत्र का अट्ठाइसवॉ एवं उन्तीसवॉ अध्याय आपस्तम्ब धर्म सूत्र है। यह धर्मसूत्र कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध है । इसमे दो प्रश्न है । प्रत्येक प्रश्न में ग्यारह पटल है । इसकी रचना गद्य और पद्य दोनों में है ।

वसिष्ठ धर्मसूत्र – कुमारिल भट्ट वसिष्ठ धर्मसूत्र का सम्बद्ध ऋग्वेद से बतलाते है किन्तु म.म. काणे के अनुसार इसमें सभी वेदों के उद्धरण प्राप्त होने के कारण सम्बन्ध किसी एक वेद से नहीं माना जाता है

शुल्वसूत्र – शुल्वसूत्र कल्पसूत्र का प्रमुख अंग है ।शुल्व का अर्थ है –मापने की रस्सी । शूल्व सूत्र में रस्सी के द्वारा मापी गयी वेदी की रचना की जाती है अर्थात् शूल्व सूत्रों में रस्सियों से नापकर यज्ञस्थान और वेदियों के निर्माण विधि का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है । यह भारतीय ज्यामितिशास्त्र का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है ।

कात्यायन शूल्वसूत्र – कात्यायन शुल्वसूत्र शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शुल्वसूत्र है । इसक दो भाग है । प्रथम भाग में सात कण्डिकायें और 90 सूत्र है । इसमें वेदियों के निर्माण के लिये रेखागणित , वेदियों के स्थानकम तथा उनके परिमाण का पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है ।

बोधायन शुल्वसूत्र – सबसे बड़ा और प्राचीनतम ग्रन्थ है । इसके तीन परिच्छेद है प्रथम परिच्छेद में 116 , द्वितीय में 86 , तथा तृतीय में 323 सूत्र है ।

आपस्तम्ब शुल्वसूत्र – आपस्तम्ब कल्पसूत्र का तीसवॉ अध्याय है । इसमें छः पटल, इक्कीस अध्याय और 323 सूत्र है । प्रथम पटल में वेदियों की रचना के रेखागणितीय सिद्धान्त, द्वितीय पटल में वेदी के कमिक स्थान तथा उनके रूपों का वर्णन है ।

अभ्यास प्रश्न –

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये –

1. वेदांग कितने है –

क. तीन ख. चार ग. पॉच घ. छः

2. वेद का पैर किसे कहा जाता है –

क. कल्प ख. शिक्षा ग. ज्योतिष घ. छन्द

3. निम्नलिखित में वेद का मुख है –

क. व्याकरण ख. ज्योतिष ग. निरूक्त घ. कोई नहीं

4. वेद का नेत्र कहे जाने वाला वेदांग कौन है –

क. व्याकरण ख. ज्योतिष ग. निरूक्त घ. कल्प

5. सन्तान का अर्थ है –

क. संहिता ख. पुत्र ग. लोक घ. कोई नहीं

6. ऋक्प्रतिशाख्य में कितने अध्याय है –

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

7. व्याकरण के अध्ययन के कितने प्रयोजन है –

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आपने जाना कि शिक्षाग्रन्थो में वर्णो के उच्चारण के गुण एवं दोषों का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। वैदिक वाङ्मय में व्याकरण का प्रमुख स्थान है । वेद के षडंगों में व्याकरण को मुख कहा गया है । मुखं व्याकरणं स्मृतम् । जिस प्रकार शरीर के अवयवों में मुख अग्रगण्य है और मुख के बिना भोजनादि न होने से शरीर की पुष्टि नहीं हो सकती, उसी प्रकार व्याकरण के बिना वेद रूपी पुरूष के शरीर की रक्षा असम्भव है और वेद के छः अंगों में व्याकरण का मुख्य स्थान है । व्युत्पत्ति के आधार पर जिसके द्वारा पदों के प्रकृति प्रत्यय का विवेचन किया जाता है उसे व्याकरण कहते है । जिस प्रकार पैर के बिना मनुष्य चलने में असमर्थ होता है उसी प्रकार छन्द ज्ञान के बिना वेद पंगु है । निघण्टु में बताया गया कि छद् धातु का अर्थ स्तुति करना, पूजा करना और प्रसन्न करना है । यतः छन्दों के द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है, उन्हें प्रसन्न किया जाता है । अतः इन्हें छन्द कहते है । वैदिक छन्दों में गुरू और लघु पर विचार नहीं किया जाता है और न उनकी संख्या पर ही विचार किया जाता है । एक या एकाधिक अक्षरों का न्यूनाधिक्य होने पर भी छन्द परिवर्तित नहीं होता है । उनकी संज्ञा परिवर्तित हो जाती है । यज्ञों के विधान में विशिष्ट समय का ज्ञान अपेक्षित है और यज्ञ यागों के लिये उपयुक्त समय वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, नक्षत्र, पक्ष, दिन – रात, आदि का मान ज्योतिष के द्वारा ही संभव है, अतः उक्त नियमों के निर्वाह के लिये ज्योतिष का ज्ञान नितान्त आवयश्क है । वेदांग ज्योतिष में ज्योतिष को वेद का सर्वोत्तम अंग माना गया है । कल्प शब्द का अर्थ है – वेद विहित कर्मों का क्रमपूर्वक कल्पना करने वाला शास्त्र । '**कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पना – शास्त्रम्**' । विवाह उपनयनादि संस्कारों एवं यज्ञ – यागादि विधियों को क्रमबद्ध रूप में वर्णन करन वाले सूत्र ग्रन्थों को कल्प कहते है । सूत्र शब्द का अर्थ है – संक्षेप अर्थात् जहॉ थोड़े शब्दों में विशेष अर्थ को कहा जाय उसे सूत्र कहते है । '**अल्पाक्षरत्वे सति बहवर्थबोधकत्वं सूत्रत्वम्**' । इस प्रकार सूत्रों में किसी भी विषय को संक्षेप में कहा जाता है । इस प्रकार कल्पसूत्र का अर्थ होता है – यज्ञ यागादि के नियमों का संक्षेप में कहना । अतः इस इकाई में वर्णित वेदांग विषयों